ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ परम पूज्य

स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज की अमृतवाणी

....

मन को सीख

प्रतिदिन मन के कान खींचिए :............ 3
मन को कभी फुर्सत न दें............ 4
मन को प्रतिदिन दुःखों का स्मरण कराओ............ 5
संत और सम्राट............ 5
मन की चाल अटपटी............ 6
मन का नशा उतार डालिए 7
मन को देखें............ 7
मन के मायाजाल से बचें............ 7
आहारशुद्धि रखें............ 8
मंत्रजप करें............ 9
निष्काम भाव से सेवा करें............ 10
चित्त की समता पायें............ 10
यह भी बीत जायेगी............ 11

मंगलमय दृष्टि रखें 11
सत्पुरुष का सान्निध्य पावें........ 11
प्रार्थना 12
वास्तविक विवेक 12
विवेक क्या है ?........ 13
आप दुःखी क्यों है? 14
यह साधना है या मजदूरी ?........ 14
सत्संग का प्रभाव लहू पर........ 15
मंकी ब्राह्मण और महर्षि वशिष्ठ........ 16
साष्टांग दण्डवत प्रणाम किसलिए ? 17
विवेकसम्पन्न पुरुष की महिमा 23

मनः एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।

मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कराण है । शुभ संकल्प और पवित्र कार्य करने से मन शुद्ध होता है, निर्मल होता है तथा मोक्ष मार्ग पर ले जाता है । यही मन अशुभ संकल्प और पापपूर्ण आचरण से अशुद्ध हो जाता है तथा जडता लाकर संसार के बन्धन में बांधता है । रामायण में ठीक ही कहा है :

निर्मल मन जन सो मोहि पावा ।
मोही कपट छल छिद्र न भावा ।

प्रतिदिन मन के कान खींचिए :

अतः हे प्रिय आत्मन् ! यदि आप अपने कल्याण की इच्छा रखते हो तो आपको अपने मन को समझाना चाहिए । इसे उलाहने देकर समझाना चाहिएः "अरे चंचल मन ! अब शांत होकर बैठ । बारंबार इतना बहिर्मुख होकर किसलिए परेशान करता है ? बाहर क्या कभी किसीको सुख मिला है ? सुख जब भी मिला है तो हर किसीको अंदर ही मिला है । जिसके पास सम्पूर्ण भारत का साम्राज्य था, समस्त भोग, वैभव थे ऐसे सम्राट भरथरी को भी बाहर सुख न मिला और तू बाहर के पदार्थो के लिए दीवाना हो रहा है ? तू भी भरथरी और राजकुमार उद्दालक की भांति विवेक करके आनंदस्वरुप की ओर क्यों नहीं लौटता ?"

राजकुमार उद्दालक युवावस्था में ही विवेकवान होकर पर्वतों की गुफाओं में जा-जाकर अपने मन को समझाते थेः "अरे मन ! तू किसलिए मुझे अधिक भटकाता है ? तू कभी सुगंध के पीछे बावरा हो जाता है, कभी स्वाद के लिए तडपता है, कभी संगीत के पीछे आकर्षित हो जाता है । हे नादान मन ! तूने मेरा सत्यानाश कर दिया । क्षणिक विषय-सुख देकर तूने मेरा आत्मानंद छीन लिया है, मुझे विषय-लोलुप बनाकर तूने मेरा बल, बुद्धि, तेज, स्वास्थ्य, आयु और उत्साह क्षीण कर दिया है ।"

राजकुमार उद्दालक पर्वत की गुफा में बैठे मन को समझाते हैं: "अरे मन ! तू बार-बार विषय-सुख और सांसारिक सम्बन्धों की ओर दौडता है, पत्नी बच्चे और मित्रादि का सहवास चाहता है परन्तु इतना भी नहीं सोचता कि ये सब क्या सदैव रहनेवाले हैं ? जिन्हें प्रत्येक जन्म में छोडता आया है वे इस जन्म में भी छूट ही जायेंगे फिर भी तू इस जन्म में भी उन्हीं का विचार करता है ? तू कितना मूर्ख है ? जिसका कभी वियोग नहीं होता, जो सदैव तेरे साथ है, जो आनन्दस्वरुप है, ऐसे आत्मदेव के ध्यान में तू क्यों

नहीं डूबता ? इतना समय और जीवन तूने बर्बाद कर दिया । अब तो शांत हो बैठ ! थोडी तो पुण्य की कमाई करने दे ! इतने समय तक तेरी बात मानकर, तेरी संगत करके मैंने अधम संकल्प किये, कुसंग किये, पापकर्म किये ।अब तो बुद्धिमान बन, पुरानी आदत छोड । अंतर्मुख हो ।”

उद्दालक की भांति इसी प्रकार एक बार नहीं परन्तु प्रतिदिन मन के कान खींचने चाहिए ।

मन पलीत है । इस पर कभी विश्वास न करें । आपके कथनानुसार मन चलता है या नहीं, इस पर निरन्तर द्रुष्टि रखें । इस पर चौबीसों घण्टे जाग्रुत पहरा रखें । मन को समझाने के लिए विवेक-विचाररुपी डंडा सतत आपके हाथ में रहना चाहिए । नीति और मर्यादा के विरुद्ध मन यदि कोई भी संकल्प करे तो उसे दण्ड दो । उसका खाना बंद कर दो । तभी वह समझेगा कि मैं किसी मर्द के हाथ में पड गया हू । अब यदि सीधा न चलून्गा तो मेरी दुर्दशा होगी ।

मन को कभी फुर्सत न दें

मन में जबरदस्त शक्ति के भंडार भरे पडे हैं । यह ऎसा वेगवान अश्व है कि इस पर लगाम हो तो शीध्र ही मंजिल पर पहुचता है । लगाम बिना यह टेढे-मेडे रास्तों पर ऎसा भागेगा कि अंत में गहरी अन्धेरी कांटे दार झाडियों में ही गिरा देगा । अतः मन पर मजबूत लगाम रखें । इसे कभी फुर्सत न दें । यह कहवत तो आप जानते होंगे कि

खाली मन शैतान का घर ।
Idle mind is devil's workshop.

अन्याथा यह खराबियाँ ही करेगा । इसलिए मन को किसी-न-किसी अच्छे काम में, किसी विचारशील कार्य-कलाप में लगाए रखें । कभी आत्मचिन्तन करें तो कभी सत्शास्त्रों का अध्ययन, कभी सत्संग करें तो कभी ईश्वरनाम-संकीर्तन करें, जप करें, अनुष्ठान करें और परमात्मा के ध्यान में डूबें । कभी खुली हवा में घूमने जायें, व्यायाम करें । आशय यह है कि इसके पैरों में कार्यरुपी बेडियाँ डाले ही रखें । इसके सिर पर यदा - कदा अंकुश लगाते ही रहें । हाथी अंकुश से वश होता है, इसी प्रकार मन भी अंकुश से वशीभूत हो जायेगा ।

मन को प्रतिदिन दुःखों का स्मरण कराओ

जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक दुःखों, से भरा पड़ा है । गर्भवास का दुःख, जन्मते समय का दुःख, बचपन का दुःख, बीमारी का दुःख, बुढापे का दुःख तथा मृत्यु का दुःख आदि दुःखो की परम्परा चलती रहती है । गुरु नानक कहते हैं :

"नानक ! दुखिया सब संसार ।"

मन को प्रतिदिन इन सब दुःखो का स्मरण कराइए । मन को अस्पतालों के रोगीजन दिखाइए, शवयात्रा दिखाइए, स्मशान-भूमि   में घू-घू जलती हुई चिताएँ दिखाइए । उसे कहें : "रे मेरे मन ! अब तो मान ले मेरे लाल ! एक दिन मिट्टी में मिल जाना है अथवा अग्नि में खाक हो जाना है । विषय-भोगों के पीछे दौड़ता है पागल ! ये भोग तो दूसरी योनियों में भी मिलते हैं । मनुष्य-जन्म इन क्षुद्र वस्तुओं के लिए नहीं है । यह तो अमूल्य अवसर है । मनुष्य-जन्म में ही पुरुषार्थ साध सकते हैं । यदि इसे बर्बाद कर देगा तो बारंबार ऐसी देह नहीं मिलेगी । इसलिए ईश्वर-भजन कर, ध्यान कर, सत्संग सुन और संतों की शरण में जा । तेरी जन्मों की भूख मिट जायेगी । क्षुद्र विषय-सुखों के पीछे भागने की आदत छूट जायेगी । तू आनंद के महासागर में ओतप्रोत होकर आनंदस्वरुप हो जायेगा ।

अरे मन ! तू ज्योतिस्वरुप है । अपना मूल पहचान । चौरासी लाख के चक्कर से छूटने का यह अवसर तुझे मिला है और तू मुठ्ठीभर चनों के लिए इसे नीलाम कर देता है, पागल ।

इस प्रकार मन को समझाने से मन स्वतः ही समर्पण कर देगा । तत्पश्चात् एक आज्ञाकरी व बुद्धिमान बच्चे के समान आपके बताये हुए सन्मार्ग पर खुशी-खुशी चलेगा ।

जिसने अपना मन जीत लिया, उसने समस्त जगत को जीत लिया । वह राजाओं का राजा है, सम्राट है, सम्राटों का भी सम्राट है ।

संत और सम्राट

एक बार एक संतश्री राजदरबार में गये और इधर-उधर देखने लगे । मंत्री ने आकर

संतश्री से कहा : "हे साधो ! यह राजदरबार है । आप देखते नहीं कि सामने राजसिंहासन पर राजाजी विराजमान हैं? उन्हें झुककर प्रणाम कीजिये ।"

संतश्री ने उत्तर दिया : " अरे मंत्री ! तू राजा से पूछकर आ कि आप मन के दास हैं या मन आपका दास है ?"

मंत्री ने राजा के समीप जाकर उसी प्रकार पूछा । राजा लज्जा गया और बोला : "मंत्री ! आप यह क्या पूछ रहे हैं ? सभी मनुष्य मन के दास हैं । मन जैसा कहता है वैसा ही मैं करता हूँ ।"

मंत्री ने राजा का यह उत्तर संतश्री से कहा । वे यह सुनकर बड़े जोर से हँस पड़े और बोले : " सुना मंत्री ! तेरा राजा मन का दास है और मन मेरा दास है, इसलिये तेरा राजा मेरे दास का दास हुआ । मैं उसे झुककर किस प्रकार प्रणाम करूँ ? तेरा राजा राजा नहीं, पराधीन है । घोड़ा सवार के आधीन होने के बदले यदि सवार घोड़े के आधीन हा, तो घोड़ा सवार को ऐसी खाई में डालता है कि जहाँसे निकलना भारी पड़ जाता है ।"

संतश्री के कथन में गहरा अनुभव था । राजा के कल्याण की सद्भावना थी । हृदय की गहराई में सत्यता थी । अहंकार नहीं किन्तु स्वानुभूति की स्नेहपूर्ण टंकार थी । राजा पर उन जीवन्मुक्त महात्मा के सान्निध्य, वाणी और द्रुष्टि का दिव्य प्रभाव पड़ा । संतश्री के ये शब्द सुनकर राजा सिंहासन से उठ खड़ा हुआ । आकर उनके पैरों में पड़ा । संतश्री ने राजा को उपदेश दिया और मानव देह का मूल्य समझाया ।

मन की चाल अटपटी

मन की चाल बड़ी ही अटपटी है इसलिए गाफिल न रहिएगा ।इस पर कभी विश्वास न करें । विषय-विकार में इसे गर्क न होने दें । चाहे जैसे तर्क लड़ाकर मन आपको दगा दे सकता है । अवश और अशुद्ध मन बंधन के जाल में फँसाता है । वश किया हुआ शुद्ध मन मोक्ष के मार्ग पर ले जाता है । शुद्ध और शांत मन से ही ईश्वर के दर्शन होते हैं, आत्मज्ञान की बातें समझ में आती हैं, तत्त्वज्ञान होता है ।

मन की आँटी अटपटी, झटपट लखे न कोय ।
मन की खटपट जो मिटे, चटपट दर्शन होय ॥

मन का नशा उतार डालिए

मन एक मदमस्त हाथी के समान है । इसने कितने ही ऋषि-मुनियों को खड्डे में डाल दिय है । आप पर यह सवार हो जाय तो आपको भूमि पर पछाड़कर रौंद दे । अतः निरन्तर सजग रहें । इसे कभी धाँधली न करने दें। इसका अस्तित्व ही मिटा दें, समाप्त कर दें ।

हाथ-से-हाथ मसलकर, दाँत-से-दाँत भींचकर, कमर कसकर, छाती में प्राण भरकर जोर लगाओ और मन की दासता को कुचल डालो, बेड़ियाँ तोड़ फेंको । सदैव के लिए इसके शिकंजे में से निकलकर इसके स्वामी बन जाओ ।

मन पर विजय प्राप्त करनेवाला पुरुष ही इस विश्व में बुद्धिमान् और् भाग्यवान है । वही सच्चा पुरुष है । जिसमें मन का कान पकड़ने का साहस नहीं, जो प्रयत्न तक नहीं करता वह मनुष्य कहलाने के योग्य ही नहीं । वह साधारण गधा नहीं अपितु मकरणी गधा है ।

वास्तव में तो मन के लिए उसकी अपनी सत्ता ही नहीं है । आपने ही इसे उपजाया है । यह आपका बालक है । आपने इसे लाड़ लड़ा-लड़ाकर उन्मत बना दिया है । बालक पर विवेकपूर्ण अंकुश हो तभी बालक सुधरते हैं । छोटे पेड़ की रक्षार्थ काँटों की बाड़ चाहिए । इसी प्रकार मन को भी खराब संगत से बचाने के लिए आपके द्वारा चौकीरुपी बाड़ होनी चाहिए ।

मन को देखें

मन के चाल-चलन को सतत देखें । बुरी संगत में जाने लगे तो उसके पेट में ज्ञान का छुरा भोंक दें । चौकीदार जागता है तो चोर कभी चोरी नहीं कर सकता । आप सजाग रहेंगे तो मन भी बिल्कुल सीधा रहेगा ।

मन के मायाजाल से बचें

पहाड़ से चाहे कूदकर मर जाना पड़े तो मर् जाइये, समुद्र में डूब मरना पड़े तो डूब मरिये, अग्नि में भस्म होना पड़े तो भले ही भस्म हो जाइये और हाथी के पैरों तले रुँदना पड़े तो रुँद जाइये परन्तु इस मन के मायाजाल में मत फँसिए । मन तर्क लडाकर

विषयरुपी विष में घसीट लेता है । इसने युगों-युगों से और जन्मों-जन्मों से आपको भटकाया है । आत्मारुपी घर से बाहर खींचकर संसार की वीरान भूमि में भटकाया है । प्यारे ! अब तो जागो ! मन की मलिनता त्यागो । आत्मस्वरुप में जागो । साहस करो । पुरुषार्थ करके मन के साक्षी व स्वामी बन जाओ ।

आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए तथा आत्मानंद में मस्त रहने के लिए सत्त्वगुण का प्राबल्य चाहिये । स्वभाव को सत्त्वगुणी बनाइये । आसुरी तत्त्वों को चुन-चुनकर बाहर फेंकिए । यदि आप अपने मन पर
नियंत्रण नहीं पायेंगे तो यह किस प्रकार संभव होगा? रजो और तमोगुण में ही रेंगते रहेंगे तो आत्मज्ञान के आँगन में किस प्रकार पहुँच पायेंगे ?

यदि मन मैला हो प्रिय ! सब ही मैला होय् ।
तन धोये से मन कभी साफ-स्वच्छ न होय ॥

इसलिये सदैव मन के कान मरोड़ते रहें । इसके पाप और बुरे कर्म इसके सामने रखते रहें । आप तो निर्मल हैं परन्तु मन ने आपको कुकर्मो के कीचड़ में लथपथ कर दिया है । अपनी वास्तविक महिमा को याद करके मन को कठोरता से देखते रहिये तो मन समझ जायेगा, शरमायेगा और अपने आप ही अपना मायाजाल समेट लेगा ।

आहारशुद्धि रखें

कहावत है कि '**जैसा खाये अन्न वैसा बने मन** । ' खुराक के स्थूल भाग से स्थूल शरीर और सूक्ष्म भाग से सूक्ष्म शरीर अर्थात् मन का निर्माण होता है । इसलिए सदैव सत्त्वगुणी खुराक लीजिये ।
दारु-शराब, मांस-मछली, बीड़ी-तम्बाकू, अफीम-गाँजा, चाय आदि वस्तुओं से प्रयत्नपूर्वक दूर रहिये । रजोगुणी तथा तमोगुणी खुराक से मन अधिक मलिन तथा परिणाम में अधिक अशांत होता है । सत्त्वगुणी खुराक से मन शुद्ध और शांत होता है ।

प्रदोष काल में किये गये आहार और मैथुन से मन मलिन होता है और आधि-व्याधियाँ बढ़ती हैं । मन की लोलुपता जिन पदार्थो पर हो वे पदार्थ उसे न दें । इससे मन के हठ का शनैः-शनैः शमन हो जायेगा ।

भोजन के विषय में ऋषियों द्वारा बतायी हुई कुछ बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

१. हाथ-पैर-मुँह धोकर पूर्वाभिमुख बैठकर मौन भाव से भोजन करें । जिनके माता-पिता जीवित हों, वे दक्षिण दिशा की ओर् मुख करके भोजन न करें । भोजन करते समय बायें हाथ से अन्न् का स्पर्श न करें और चरण, मस्तक तथा अण्डकोष को भी न छूएँ ।केवल प्राणादि के लिए पाँच ग्रास अर्पण करते समय तक बायें हाथ से पात्र को पकड़े रहें, उसके बाद छोड़ दें ।

२. भोजन के समय हाथ घुटनों के बाहर न करें । भोजन-काल में बायें हाथ से जलपात्र उठाकर दाहिने हाथ की कलाई पर रखकर यदि पानी पियें तो वह पात्र भोजन समाप्त होने तक जूठा नहीं माना जाता, ऎसा मनु महाराज का कथन है । यदि भोजन करता हुआ द्विज किसी दूसरे भोजन करते हुए द्विज को छू ले तो दोनों को ही भोजन छोड़ देना चाहिए ।

३. रात्रि को भोजन करते समय यदि दीप बुझ जाय तो भोजन रोक दें और दायें हाथ से अन्न् को स्पर्श करते हुए मन-ही-मन गायत्री का स्मरण करें । पुनः दीप जलने के बाद ही भोजन शरु करें ।

४. अधिक मात्रा में भोजन करने से आयु तथा आरोग्यता का नाश होता है । उदर का आधा भाग अन्न से भरो, चौथाई भाग जल से भरो और चौथाई भाग वायु के आवागमन के लिए खाली रखो ।

५. भोजन के बाद थोडी देर तक बैठो । फिर् सौ कदम चलकर कुछ देर तक बाइँ करवट लेटे रहो तो अन्न ठीक ढंग से पचता है । भोजन के अन्त में भगवान को अर्पण किया हुआ तुलसीदल खाना चाहिए ।

भोजन विषयक इन सब बातों को आचार में लाने से जीवन में सत्वगुण की वृद्धि होती है ।

मंत्रजप करें

तुच्छ ओछे लोगों की संगत से मन भी तुच्छ और विकारी बन जाता है । मंत्रजप करने

से मन के चारों ओर एक विशेष प्रकार का आभामंडल तैयार हो जाता है । इस आभामंडल के कुत्सित आंदोलनों से अपना रक्षण हो जाता है । तत्पश्चात् अपना मन पतित विचारों और पतित कार्यों की ओर आकर्षित् नहीं होता । उत्थान करानेवाले सत्कार्यों की ओर ही यह सतत गतिमान रहेगा । अतः प्रत्येक दिन नियमपूर्वक मंत्रजप करते रहकर मन को सत्त्वगुणप्रधान बनाते रहिये । चलते-फिरते भी मंत्र का आवर्तन करते रहें ।

यदा कदा प्रयोग करें । कम्बल बिछाकर उस पर चित होकर लेटें । शरीर को एकदम ढीला छोड़ दें । बिल्कुल शांत हो जायें । समग्र विश्व् को भूल जायें । शांत होकर विचार करने से जानेंगे कि जो सुख-दुःख मिलता है वह सब हमारे कर्मों का फल है । इसका फल देने में मित्र और शत्रु तो निमित्त मात्र हैं । मैं जागता हूँ तो समस्त संसार दीख पड़ता है । मैं सो जाता हूँ तो संसार गायब । इसलिए यह समस्त जगत स्वप्न के समान मिथ्या है । यही सत्य है, यही वास्तविकता है ।

इस वास्तविकता को जानकर मन शांत हो जायेगा, मौन को उपलब्ध हो जायेगा । शांत और स्वस्थ मन शुद्ध होता है ।

निष्काम भाव से सेवा करें

निष्काम भाव से यदि परोपकार के कार्य करते रहेंगे तो भी मन की मलिनता दूर हो जायेगी । यह प्रकृति का अटल नियम है । इसलिए परोपकार के कार्य निष्काम भाव से करने के लिये सदैव तत्पर रहें ।

चित्त की समता पायें

छोटी-मोटी परिस्थितियों से घबराकर अपने चित्त की समता न खोयें । भले ही आपको कोई गाली दे अथवा हानि पहुँचाए परन्तु आप क्रोध न करें । क्रोध करने से अपनी ही शक्ति क्षीण होती है । इसलिए शांत रहें, स्वस्थ रहें और उपस्थित परिस्थिति का समाधान बुद्धिपूर्वक यथा उचित करें ।

यह भी बीत जायेगी

सुख में फूलो मत । दुःख में निराश न बनो । सुख और दुःख दोनों ही बीत जायेंगे । कैसी भी परिस्थिति आये उस समय मन को याद दिलायें कि यह भी बीत जायेगी ।

Even that shall pass too.

इस सूत्र को सदैव याद रखें । मन इससे शांत रहेगा और राग-द्वेष कम होता जायेगा ।

मंगलमय दृष्टि रखें

अपनी दृष्टि को शुभ बनायें । कहीं भी बुराई न देखें । सर्वत्र मंगलमय दृष्टि रखे बिना मन में शांति नहीं रहेगी । जगत आपके लिए कल्याणकारी ही है । सुख-दुःख के सभी प्रसंग आपकी गढ़ाई करने के लिए हैं । सभी शुभ और पवित्र हैं । संसार की कोई बुराई आपके लिए नहीं है । सृष्टि को मंगलमय दृष्टि से देखेंगे तो आपकी जय होगी ।

दृष्टिं ब्रह्ममयीं कृत्वा पश्यमेवमिदं जगत ।

सत्पुरुष का सान्निध्य पावें

मन के शिकंजे से छूटने का सबसे सरल और श्रेष्ठ उपाय यह है कि आप किसी समर्थ सदगुरु के सान्निध्य में पहुँच जायें । उनकी सेवा तन-मन-धन से करें । संसारियों की सेवा करना कठीन है क्योंकि उनकी इच्छाओं और वासनाओं का कोई पार नहीं, जबकि सद्गुरु तो अल्प सेवा से ही संतुष्ट हो जायेंगे क्यों कि उनकी तो कोई इच्छा ही नहीं रही । ऎसे सद्गुरु का संग करें, उनके उपदेशों का श्रवण करें, मनन करें, निदिध्यासन करें । उनके पास रहकर आध्यात्मिक शास्त्रों का अभ्यास करें, ब्रह्मविद्या के रहस्य जानें और आत्मसात करें । पक्की खोज करें कि आप कौन हैं ? यह जगत क्या है ? ईश्वर क्या है ? सत्य क्या है ? मिथ्या क्या है ?

इन समस्याओं का सच्चा भेद हृदय में खुलेगा तब पता चलेगा कि जगत जैसा तो कुछ है ही नहीं । सर्वत्र आप स्वयं ही ब्रह्मस्वरुप में व्याप्त हैं । आप ही वृत्ति को बहिर्मुख करके अलग-अलग रुप धारण करके खेल खेलते हैं, लीला करते हैं । जीवन के समस्त

दुःखों से मुक्ति पाने का एकमात्र सच्चा उपाय है ब्रह्मविद्या ।

पूर्ण समर्थ सद्गुरु के समागम से ब्रह्मविद्या मिलेगी । ब्रह्मविद्या से आपका मन शुद्ध, स्वच्छ, निर्मल होकर अंत में अमन बन जायेगा । सर्वत्र ब्रह्मदृष्टि पक्की हो जायेगी । समग्र जगत मरुभूमि के जल के समान भासित होगा ।

पहले भी था ब्रह्म ही बाद में रहेगा ब्रह्म ।
निकाल डालो बीच का जग का झूठा भ्रम ॥

जब जगत ही नहीं रहेगा तब मन कहाँसे रहेगा ? आत्मस्वरुप में एकमात्र आप ही रहेंगे । तदनन्तर जो संकल्प उठेगा वह अपने आप पूरा होगा । आपके काम, क्रोध, मोह, मद, मत्सर ये सब शत्रु गायब हो जायेंगे । जिसने मन को जीता, उसने समस्त जगत को जीता । जिसने मन को जीता, उसने परमात्म-प्राप्ति की ।

मन का दर्पण स्वच्छ किया जिसने अपने तांई ।
अनुभव उसका देखी उसमें आत्मदेव की सांई ॥
भीतर बाहर दिखे अकेला न कहीं दूसरा कांई ।
कार्यसिद्ध हुए उसके तो 'सामी' कहे सुन सांई ॥

*

प्रार्थना

हे भगवान ! सबको सद्बुद्धि दो... शक्ति दो... अरोग्यता दो... हम अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करें और सुखी रहें...

*

वास्तविक विवेक

- परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

अपने जीवन में विवेक लाइये । विवेकहीन जीवन तो जीवन ही नहीं । विवेकहीन व्यक्ति को कदम-कदम पर दुःख सहने पड़ते हैं । लोग कहते हैं: “हमने विवेक से ही अपना जीवन बनाया है । देखिए, हम इंजीनियर बन गये... डॉक्टर बन गये... हम अमुक फैक्टरियों के मालिक बन गये... हम इतने बड़े कार्यभार सँभालते हैं... हम इतनी ऊँची सत्ता पर, ऊँचे पद पर पहुँच गये हैं... इतने लोग हमें सम्मान देते हैं ।”

अरे नहीं... यह विवेक नहीं ।

व्यापार करना, धन कमाना, अपने शरीर की वाहवाही कराना, भवन बनवाना आदि सब तो सामान्य विवेक है । इंजीनियर बनकर मकान बना दिया... यूँ तो चिड़िया भी अपना मकान बनाकर रहती है । जीवविज्ञान पढ़कर डॉक्टर बन गये और पार्थिव शरीर का कोई रोग मिटा दिया... यह सब सामान्य विवेक है ।

विवेक क्या है ?

विवेक का अर्थ है: सत्य क्या है, मिथ्या क्या है, शाश्वत क्या है, नश्वर क्या है यह बात ठीक से समझकर अपने जीवन में ढाल लें । एक्मात्र परमात्मा सत्य है । शेष सब जो कुछ भी है सो पुत्र, परिवार, भवन, दुकान, मित्र, सम्बन्धी, अपने, पराये आदि सब अनित्य हैं । एक दिन इन सबको छोड़कर जाना पड़ेगा । इस शरीर के साथ ही समस्त सम्बन्ध, निन्दा-प्रतिष्ठा, अमीरी-गरीबी, बीमारी-तन्दुरुस्ती यह सब जलकर खाक हो जायेगी । तब मित्र, पति, पत्नी, बालक, व्यापार-धंधे, लोगों की खुशामद आदि कोई भी मृत्यु से बचा नहीं पायेंगे । अतः उन्हें ही सँभालने, प्रसन्न रखने में संलग्न रहना यह विवेक नहीं है ।

भगवान राम के गुरु महर्षि वशिष्ठ कहते हैं: "हे रामजी ! चांडाल के घर की भिक्षा खाकर भी यदि सत्संग मिलता हो और उससे शाश्वत- नश्वर का विवेक जागता हो तो यह सत्संग नहीं छोड़ना चाहिए ।”

वशिष्ठजी का कथन कितना मार्मिक है ! क्योंकि ऎसा सत्संग हमें अपने शाश्वत स्वरुप की ओर ले जायेगा जबकि संसार के अन्य व्यवहार चाहे जैसी भी उपलब्धि करायें, अंत में मृत्यु के मुख में ले जायेंगे ।

आप दुःखी क्यों है?

तनिक स्वस्थता से विचारिये कि आप दुःखी क्यों हैं ? आपके पास धन नहीं है ? आपकी बुद्धि तीक्ष्ण नहीं है ? आपके पास व्यवहारकुशलता नहीं है ? आप रोगी हैं ? आपमें बल नहीं है ? अथवा आपमें सांसारिक ज्ञान नहीं है ? बहुतों के पास यह सब है :धनवान हैं, बलवान हैं, व्यवहारकुशल हैं, बुद्धिमान हैं, जगत का ज्ञान भी जीभ के सिरे पर है, तथापि वे दुःखी हैं । दुःखी इसलिए नहीं हैं कि उनके पास इन सब वस्तुओं अथवा वस्तुओं के ज्ञान का अभाव है । परन्तु दुःखी इसलिए हैं कि संसार का सब कुछ जानते हुए भी अपने आपको नहीं जानते । अपने आपको जान लें तो सर्व शोकों से पार हो जायें, जन्म-मरण से पार हो जायें । ... और अपने आपको न जानें तो शेष सब जाना हुआ धूल हो जाता है, क्योंकि शरीर की मृत्यु के साथ ही समस्त यहीं रह जाता है ।

यह साधना है या मजदूरी ?

मिथ्या में सत्य को जान लेना, नश्वर में शाश्वत को खोज लेना, आत्मा को पहचान लेना तथा आत्मामय होकर जीना यही विवेक है । इसके अतिरिक्त अन्य सभी मजदूरी है, व्यर्थ बोझा उठाना और अपने आपको मूढ़ सिद्ध करने जैसा है । ऐसा विवेक धारण कर अपने आपको आध्यात्मिक मार्ग पर चला दें तो सभी कुछ उचित हो जाये, जीवन सार्थक हो जाये । अन्यथा कितने ही गद्दी-तकियों पर बैठिए, टेबल-कुर्सियों पर बैठिए, एयरकंडीशन्ड कार्यालयों में बैठकर आदेश चलाइये अथवा जनता के सम्मुख ऊँचे मंच पर बैठकर अपनी नश्वर देह और नाम की जयजयकार करवा लीजिए परंतु अंत में कुछ भी हाथ न लगेगा ।

ढाक के वे ही तीन पात ।
चौथा लगे न पाँचवें की आस ॥

आप जहाँ के तहाँ ही रह जायेंगे । आयु बीत जायेगी और पछतावे का पार न रहेगा । जब मौत आयेगी तब जीवन भर कमाया हुआ धन, परिश्रम करके पाये हुए पद-प्रतिष्ठा, लाड़ से पाला-पोसा यह शरीर निर्दयतापूर्वक साथ छोड़ देगा । आप खाली हाथ रोते रहेंगे, बार-बार जन्म-मरण के चक्कर में घूमते रहेंगे । इसीलिए केनोपनिषद के ऋषि कहते हैं :

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति ।
न चेदिहावेदीन महती विनष्टिः ॥

'यदि इस जीवन में ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लिया या परमात्मा को जान लिया, तब तो जीवन की सार्थकता है और यदि इस जीवन में परमात्मा को नहीं जाना तो महान विनाश है ।' (केनोपनिषद : २.५)

...तो यह विवेक प्राप्त होता है सत्संग से और ज्ञानी महापुरुषों के सान्निध्य से । सत्संग से और ज्ञानी महपुरुषों के संग से किस प्रकार का उत्थान होता है इसे आज का विज्ञान भी सिद्ध करने लगा है ।

सत्संग का प्रभाव लहू पर

ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी की डिलाबार प्रयोगशाला में एक प्रयोग बारंबार किया गया है और वह यह कि आपके अपने विचारों का प्रभाव तो आपके लहू पर पड़ता ही है परन्तु आपके विषय में शुभ अथवा अशुभ विचार करनेवाले अन्य लोगों का प्रभाव आपके लहू पर कैसा पड़ता है और आपके भीतर कैसे परिवर्तन होते हैं ? वैज्ञानिकों ने अपने दस वर्ष के परिश्रम के पश्चात निष्कर्ष निकाला कि:

"आपके लिए जिनके हृदय में मंगल भावना भरी हो, जो आपका उत्थान चाहता हो ऐसे व्यक्ति के संग में जब आप रहते हैं तब आपके प्रत्येक घन मि.मी. रक्त में १५०० श्वेतकणों का वर्धन एकाएक हो जाता है । इसके विपरीत आप जब किसी द्वेषपूर्ण अथवा दुष्ट विचरोंवाले व्यक्ति के पास जाते हो तब प्रत्येक घन मि.मी रक्त में १६०० श्वेतकण तत्काल घट जाते हैं ।" वैज्ञानिकों ने तुरन्त लहू-निरीक्षण उपरान्त यह निर्णय प्रकट किया है । जीवविज्ञान कहता है कि रक्त के श्वेतकण ही हमें रोगों से बचाते हैं और अपने आरोग्य की रक्षा करते हैं । वैज्ञानिकों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि शुभ विचारवाले, सबका हित चाहनेवाले, मंगलमूर्ति सज्ज्न पुरुषों में ऐसा क्या होता है कि जिनके दर्शन से अथवा जिनके सान्निध्य में आने से इतना परिवर्तन आ जाता है ? अपना योगविज्ञान तो पहले से जानता है परन्तु अब आधुनिक विज्ञान भी इसे सिद्ध करने लगा है ।

रक्त में जब इतना परिवर्तन होता है तब अन्य कितने अदृश्य एवं अज्ञात परिवर्तन होते होंगे जो कि विज्ञान के जानने में न आते हों ?

मंकी ब्राह्मण और महर्षि वशिष्ठ

इसलिए मंकी नामक एक ब्राह्मण जब जंगल छोड़कर गाँव के अज्ञानी लोगों का संग करने जाता है तब श्री वशिष्ठजी उसे बीच में ही रोक देते हैं और कहते हैं :

"अरे मंकी ! तू कहाँ जाता है ? अंधेरी गुफा का साँप होना, शिला के अन्दर का कीड़ा होना अथवा निर्जल मरुभूमि का मृग होना अच्छा है परन्तु दुर्बुद्धि लोगों का संग करना अच्छा नहीं है ।"

श्री वशिष्ठजी कहते हैं: "मंकी ! तू जिससे मिलने के लिए आतुर होकर दौड़ता जा रहा है वे दुर्बुद्धि लोग स्वयं अज्ञान की आग में जल रहे हैं, तब तुझे कैसे सुख दे सकेंगे ?"

मंकी की यह कथा 'श्रीयोगवाशिष्ठ महारामायण' ग्रंथ में आती है । वशिष्ठजी जैसे महर्षि का संग ब्राह्मण मंकी को खूब शांति देता है ।

वह स्वयं कहता है : "हे भगवान ! आप कौन हैं ? आपके वचन सुनकर मुझे बहुत शांति मिली है । इस संसार को असार जानकर मैं उदासीन हुआ हूँ । मैंने अनेक जन्म लिये हैं परन्तु अब तक परम शांति को उपलब्ध नहीं हुआ । अतएव इस प्रकार भटकता फिरता हूँ । आपको देखकर मुझे विश्वास होता है कि आपके शरणागत रहेने से मेरा कल्याण होगा । आप कल्याणस्वरुप लगते हैं ।"

साधक और शिष्य का शरणागत-भाव जितना प्रबल होगा, उतना ही वह ज्ञानी महपुरुष के आगे झुकेगा और जितना झुकेगा उतना पायेगा । शिष्य का समर्पण देखकर गुरु का हाथ स्वाभाविक ही उसके मस्तक पर जाता है । अब तो पाश्चात्य विज्ञान भी इस योगविद्या के सूक्ष्म रहस्यों को समझने लगा है कि ऎसा क्यों होता है ।

महपुरुषों की आध्यात्मिक शक्तियाँ समस्त शरीर की अपेक्षा शरीर के जो नोंकवाले अंग हैं उनके द्वारा अधिक बहती हैं । इसी प्रकार साधक के जो गोल अंग हैं उनके द्वारा तेजी से ग्रहण होती हैं । इसी कारण से गुरु शिष्य के सिर पर हाथ रखते हैं ताकि हाथ की अँगुलियों द्वारा वह आध्यात्मिक शक्ति शिष्य में प्रवाहित हो जाये । दूसरी ओर शिष्य जब गुरु के चरणों में मस्तक रखता है तब गुरु के चरणों की अँगुलियाँ और विशेषकर अँगूठा द्वारा जो अध्यात्मिक शक्ति प्रवाहित होती है वह मस्तक द्वार शिष्य अनायास ही ग्रहण

करके अध्यात्मिक शक्ति का अधिकारी बन जाता है । इसी प्रकार शिष्य द्वार किये जानेवाले साष्टांग दण्डवत प्रणाम के पीछे भी रहस्य है ।

साष्टांग दण्डवत प्रणाम किसलिए ?

विदेश के बड़े-बड़े विद्वान एवं वैज्ञानिक भारत में प्रचलित गुरु समक्ष साधक के साष्टांग दण्डवत प्रणाम की प्रथा को पहले समझ न पाते थे कि भारत में ऐसी प्रथा क्यों है । अब बड़े-बड़े प्रयोगों के द्वारा उनकी समझ में आ रहा है कि यह सब युक्तियुक्त है । इस श्रद्धा-भाव से किये हुए प्रणाम आदि द्वारा ही शिष्य गुरु से लाभ ले सकता है, अन्यथा आध्यात्मिक उत्थान के मार्ग पर वह कोरा ही रह जाय ।

एक बल्गेरियन डॉ. लोजानोव ने 'इन्स्टीट्यूट आफ सजेस्टोलोजी ' की स्थापना की है जिसे एक 'मंत्र महाविद्यालय' कहा जा सकता है । वहाँ प्रयोग करनेवले लोरेन्जो आदि वैज्ञानिकों का कहना है कि इस संस्था में हम विद्यार्थियों को २ वर्ष का कोर्स २० दिन में पूरा करा देते हैं । वैज्ञानिकों से भरी अंतर्राष्ट्रीय सभा में जब लोजानोव से पूछा गया कि यह युक्ति आपको कहाँ से मिली । तब उन्होंने कहा: "भारतीय योग में जो शवासन का प्रयोग है उसमें से मुझे इस पद्धति को विकसित करने की प्रेरणा मिली ।"

लोजानोव कहते हैं: "रात्रि में हमें विश्राम और शक्ति प्राप्त होती है क्योंकि हम उस समय चित सो जाते हैं । इस अवस्था में हमारे सभी प्रकार के शारीरिक-मानसिक तनाव (टेन्शन) कम हो जाते हैं । परिणामस्वरुप हममें फिर नयी शक्ति और स्फूर्ति ग्रहण करने की योग्यता आ जाती है । जब हम खड़े हो जाते हैं तब हमारे भीतर का अहंकार भी उठ खड़ा होता है और समस्त 'टेन्शन' शरीर पर फिर से लागू पड़ जाते हैं ।

निद्रा के समय की यह अवस्था शवासन में शरीर के शिथिलीकरण के समय उत्पन्न हो जाती है । साष्टांग दण्डवत प्रणाम में भी शरीर इसी प्रकार तनावरहित शिथिल और समर्पण की स्थिति में आ जाता है ।

चेक यूनिवर्सिटी में एक अन्य वैज्ञानिक राबर्ट पावलिटा ने भी इसी प्रकार के प्रयोग किये हैं । वे किसी भी थके हुए व्यक्ति को एक स्वस्थ गाय के नीचे जमीन पर चित लिटा देते हैं और कहते हैं कि समस्त तनाव (टेन्शन) छोड़कर पड़े रहो और भावना करो कि आप

पर स्वस्थ गाय की शक्ति की वर्षा हो रही है । कुछ ही मिनटों में थकान और स्फूर्ति का मापक यंत्र बताने लगता है कि इस व्यक्ति की थकान उतर चुकी है और वह पहले से भी अधिक ताजा हो गया है । लोगों ने पावलिटा से पूछा : "यदि हम गाय के नीचे सोयें नहीं और केवल बैठे रहें तो ?" पावलिटा कहते हैं कि जो काम क्षणों में होता है वह काम बैठने से घण्टों में भी होना कठिन है ।

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों ने भी अनुभव से जाना कि रोगी सामने बैठकर इतना लाभान्वित नहीं होता, जितना उसके सामने चित लेटकर, तनावरहित अवस्था में शिथिल होकर लाभान्वित होता है । उस अवस्था में वह अपने अंदर छुपी हुई ऎसी बातें भी कह देता है, गुप्तरुप से किये अपराध को भी अपने आप स्वीकार लेता है जिन्हें वह बैठकर कभी नहीं कहता अथवा स्वीकारता । चित लेटने से उसके अंदर समर्पण का एक भाव अपने आप पैदा होता है ।

आज कल स्कूल-कॉलेज के बड़े-बड़े शिक्षाशास्त्रियों की शिकायत है कि शिक्षकों के प्रति विद्यार्थियों का श्रद्धाभाव बिल्कुल घट गया है । अतएव देश में अनुशासनहीनता तेजी से बढ़ रही है । इसका एक कारण यह भी है कि हम ऋषियों द्वारा निर्दिष्ट दण्डवत प्रणाम की प्रथा को विदेशी अन्धानुकरण के जोश में ठोकर मारने लगे हैं ।

जब वशिष्ठजी कहते हैं : "हे रामचन्द्रजी ! जब मैंने मंकी ब्राह्मण से कहा कि, 'मैं वशिष्ठ हूँ । तू संशय मत कर । मैं तुझे अकृत्रिम शांति देकर जाऊँगा । तब मंकी मेरे चरणों में गिर पड़ा और उसकी आँखों से आनंदाश्रु बहने लगे । वह महा आनंद को प्राप्त हुआ ।"

यह कैसे हुआ होगा ? आप शंका कर सकते हैं । परन्तु इसके पीछे गूढ वैज्ञानिक रहस्य अब प्रकाश में आये हैं । यह पूर्णतया संभव है ।

किरलियान नामक वैज्ञानिक ने एक अति संवेदनशील फोटोग्राफी का आविष्कार किया है जो व्यक्ति के मस्तिष्क के चारों ओर फैले हुए आभामण्डल का रंग व विस्तार बताता है । यह आभामण्डल (इलेक्ट्रोडायनेमिक फील्ड) मनुष्य, पशु, पक्षी ही नहीं अपितु वृक्ष के चारों ओर भी होता है । जो जितना तेजस्वी होगा, उतना ही दूसरों को प्रभावित करेगा । जब मनुष्य मरता है तब यह आभामण्डल क्षीण होने लगता है । पूर्ण विसर्जित होने में उसे तीन दिन लगते हैं ।

किरलियान की फोटोग्राफी जिस रहस्य को आज सिद्ध कर रही है उसे भारत के योगी प्राचीन काल से जानते हैं । भगवान राम, भगवान श्रीकृष्ण, महत्मा बुद्ध, चैतन्य एवं अन्य महापुरुषों के मस्तक के पीछे प्रकाश का वृत्त बनाया जाता है जो इस आभामण्डल की ही सूचना देता है । आज भी बहुत-से साधकों को जब उनकी वृति सूक्ष्म होती है तब अपने इष्टदेव अथवा गुरुदेव के चारों ओर प्रकाश का वृत दिखाई देता है ।

निःसंदेह महर्षि वशिष्ठ का आभामण्डल अत्यंत तेजस्वी होगा जिसके कारण मंकी का शोक एकदम हरण हुआ और वह बोल उठाः " हे भगवन ! कितने ही जन्मों से लेकर आज तक मैंने कई भोग भोगे हैं, परन्तु मुझे दुःख ही मिला है । आज आपके दर्शन करके मैं कृतकृत्य हो गया हूँ । भगवन! जब तक यह जीव संतजनों का सत्संग नहीं करता तब तक वह अंधेरी रात में ही जीता है । संतजनों का संग और उनकी वाणीरुपी सत्शास्त्रों का अध्ययन करना यह उज्ज्वल चाँदनी रात जैसा है ।"

मंकी ब्राह्मण के लिए महर्षि वशिष्ठ के दर्शन एवं वचनामृत शोक-संताप को हरनेवाले सिद्ध हुए । वास्तव में मुनि वशिष्ठ जैसे महापुरुष द्वारा अथवा कहिए कि सदगुरु द्वारा मिले हुए मंत्र अथवा
आध्यात्मिक रहस्य जो शिष्य या साधक सुन लेता है, झेल लेता है और सँभाल सकता है उसके लोक-परलोक सँभल जाते हैं । जो शिष्य या साधक सद्गुरु की वह अमूल्य पूँजी न सँभालकर अज्ञानी मूढो के संग में मनमुख होकर आचरण करने लगता है उसकी सारी कमाई बिखर जाती है ।

बहुत-से सधकों को गुरु के सान्निध्य में रहना तब तक अच्छा लगता है जब तक वे प्रेम देते हैं । परन्तु जब उन साधकों के उत्थानार्थ गुरु उनका तिरस्कार करते हैं, फटकारते हैं, उनका देहाध्यास तोडने के लिए विविध कसौटियों में कसते हैं तब साधक कहता है : " गुरु के सान्निध्य में रहना तो चाहता हूँ परन्तु नियंत्रण में नहीं । हम साधना तो करेंगे परन्तु स्वतंत्र रहकर ।"

मन उन्हें दगा देता है । यह स्वतंत्रता नहीं बल्कि स्वेच्छाचार है । सच्ची स्वतंत्रता तो आत्मज्ञान में ही है और उस पर जल्दी आगे बढ़ने के लिए ही गुरु ने साधक को कंचन की तरह तपाना शरु किया था । परंतु साधक में यदि विवेक जागृत न हो तो मन उसे अध:पतन के ऎसे खड्डे में पटकता है कि उसे उठने में वर्षो लग जाते हैं, जन्मों लग जाते हैं ।

अब जरा विचारिये तो सही ! आज तक जिस मन को आप अपने काबू में न रख सके और स्वेच्छाचरी होने के कारण भटकते रहे उस मन को ठीक करने के लिए तो आपने गुरु की शरण स्वीकारी थी । जब गुरु ने आपके मन की मान्यताओं की चीर-फाड़ करने के लिए अपने अस्त्र-शस्त्र उठाये तो अब लौटकर किसलिए जाना ? होने दो जो होता है उसे । आप कोई बच्चे जैसे अथवा रोगी तो हो नहीं कि आपके ऑपरेशन के लिए ईथर य क्लोरोफार्म आपको सुँघाया जाय । आप अपने मन को समझाइये :"अरे मन ! तू मुझे दगा देकर गुरु के द्वार से पुनः दूर धकेलना चाहता है ? मुझे अपने उसी पुराने जाल में फँसाना चाहता है ? जा, अब मैं तेरी एक न सुनूँगा । अब तक मैं बहुत भटका । तेरी बात मानकर अब जन्म-मरण के चक्कर में अधिक नहीं भटकना है । यदि तेरा सुझाव मानकर अन्यत्र कहीं गया तो वहाँभी किसी पति या पत्नी की, सेठ या नेता की, मान अथवा अपमान की दासता में तो रहना ही पड़ेगा क्योंकि जब तक अंदर का सुख नहीं मिलता तब तक सुख के लिए बाहरी किसी-न-किसी वस्तु या व्यत्कि की दासता तो स्वीकारनी ही पड़ेगी । अरे मन ! तो फिर यह गुरु का द्वार ही क्या बुरा है ?" संत कबीरजी कहते हैं :

दुर्जन की करुणा बुरी, भलो सांई को त्रास ।
सूरज जब गरमी करे, तब बरसन की आस ॥

...और सच पूछो तो गुरु आपका कुछ लेना नहीं चाहते । वे आपको प्रेम देकर तो कुछ देते ही हैं, परन्तु फटकार देकर भी कोई उत्तम खजाना आपको देना चाहते हैं । भले आप इस बात को आज न समझें परन्तु यह वास्तविकता है । डॉक्टर ऑपरेशन द्वारा आपके शरीर के विजातीय पदार्थों को ही निकालता है जिससे आपको आरम मिले ।

मफतलाल के पेट का दर्द जब बढ़ गया तब डॉक्टर ने कहा कि अब ऑपरेशन के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है । बहुत समझाने के पश्चात मफतलाल ऑपरेशन के लिए बड़ी कठिनाई से तैयार हुआ । ऑपरेशन थियेटर में जब ऑपरेशन की कार्यवाही शरु होने लगी तब मफतलाल बोला :   "जरा ठहरिए ! "

सभी चकित हो गये ! बड़ी कठिनाई से मफतलाल ऑपरेशन के लिए तैयार हुआ था । अब कहीं फिर से रुठ न जाय ! सबने देखा कि उसने जेब से आठ-दस आने की रेजगारी निकालकर कहा : "मेरे ये पैसे लिख लीजिए । क्य पता, मुझे बेहोश करने के बाद

आपकी नीयत बिगड़ जाय तो ! "

इतना बड़ा ऑपरेशन हो रहा है और मफतलाल को अपने आठ-दस आने की चिन्ता लगी है ! यह मफतलाल कोई दूर नहीं है । संभव है वह अपने में ही हो । अपना ध्यान अपनी मन्यताएँरुपी आठ-दस आने बचाने में है, पेट का दर्द दूर करने में कम है ।

वह तो पेट का रोग था । यहाँ तो जन्म-मरणरुपी रोग का मूलोच्छेद करने का प्रश्न है । वशिष्ठजी कहते हैं : "अज्ञानी के संग रहने से तो किसी जलविहीन मरुस्थल का मृग हो जान अच्छा है ।" ...और मैं कहता हूँ कि जन्म-मरणरुपी महारोग के निवारणार्थ गुरु के द्वारा ऑपरेशन के समय जो छुरीरुपी अपमान सहना पड़े तो सह लेना चाहिए । तितिक्षा और भूख-प्यासरुपी कैंची का चीरा सहना पड़े तो सह लेना चाहिए । ईथर अथवा क्लोरोफार्मरुपी तिरस्कार-फटकार सहना पड़े तो सह लेना चाहिए परन्तु अपना निश्चय नहीं छोड़ना चहिए, साधना नहीं छोड़नी चाहिए ।

खूब सोचकर जिनको गुरु माना है उनका द्वार प्रशंसा-प्राप्ति अथवा आठ-दस आनारुपी नश्वर चीजों के मोह में मत छोड़िए क्योंकि गुरु रुपी डॉक्टर आपका महारोग मिटा देंगे । अतः ईश्वर अथवा गुरु को पीठ दिखाकर जीने के लोभ में न फँसना । यदि ईश्वर अथवा गुरु के द्वार से ठुकराये गये तो सर्वत्र ठोकरें खानी पड़ेंगी ।

नरसिंह मेहता ठीक ही कहते हैं :

भूमि सुलाऊँ भूखा मारुँ तिस पर मारुँ मार ।
इसके बाद भी जो हरि भजे तो कर दूँ निहाल ॥

जब गुरु आपको चमकाने के लिए गढ़ने लगें, आपकी मान-प्रतिष्ठा को जमीनदोस्त करने लगें तो घबरायें नहीं । धैर्य रखें । आपको हर प्रकार से विसर्जित करने के लिए वे उद्यत हों तब विसर्जित होने में झिझको मत क्योंकि एक बार तो सभी कुछ विसर्जित होनेवाला ही है । मृत्यु द्वारा होनेवाले विसर्जन से पहले यदि गुरु के हाथ से विसर्जन स्वीकार कर लेंगे तो वे आपके अंदर सुषुप्त आपके स्वतंत्र स्वरुप को जगा देंगे । तत्पश्चात आपको प्रकृति का कोई बंधन बाँध नहीं सकेगा । आप सभी बंधनों से मुक्त हो जायेंगे । आप स्वतंत्रता की सुगंध अंदर से उठती देखेंगे । फिर किसी स्वतंत्रता अथवा सुख के लिए बाहर भटकना नहीं पड़ेगा ।

यही विवेक है । इसीको विवेकपूर्ण जीवन कहते हैं । ऎसा जीवन बना लेंगे तो देवता भी

आपके सान्निध्य का लाभ लेने को उत्सुक रहेंगे । यही है जीवन का साफल्य, जीवन की पूर्णता । इसे ही सिद्ध करें । यह सिद्ध हो जायेगा तो अन्य सब सिद्ध हो जायेगा और कुछ भी करना शेष नहीं रहेगा ।

इसलिए हिम्मत करो, साहस करो, छलाँग लगाओ । अपने निजस्वरुप को जानो । हे विश्व के सम्राट ! हे देवों के देव ! अपनी महिमा में जागिए । यह कुछ कठिन नहीं । दूर नहीं है । असंभव भी नहीं है ।

प्रत्येक परिस्थिति में साक्षीभाव... जगत को स्वप्नतुल्य समझकर अपने केन्द्र में थोड़ा तो जागकर देखिए ! फिर मन आपको दगा न देगा ।

ॐ शांतिः ! शांतिः ! शांतिः !

सर्वस्व देकर भी अगर अपने शुद्ध भावों की रक्षा होती है तो सौदा सस्ता है । रुपये, पैसे, धन, सत्ता साथ में नहीं चलेंगे । मरने के बाद आपका स्वभाव ही आपके साथ चलेगा । आपकी सामग्री आपके साथ नहीं चलेगी, आपका स्वभाव ही आपके साथ चलेगा । अतः अपने स्वभाव को ऊँचा, अति ऊँचा बनाइये ।

शाबाश वीर... ! शाबाश ! साहस कीजिए । जो बीत गई सो बीत गई । हजार बार असफल होने पर भी फिर से आगे बढ़िये ।

ॐ ॐ ॐ

सद्गुरु तेरा विसर्जन करते हैं । तू आनाकानी मत कर अन्यथा तेरे परमार्थ का पथ लम्बा हो जायेगा । तू सहयोग दे । तू उनके चरणों में विलीन हो जा और स्वामी बन । शीष देकर सिरताज बन । तू अपना घमंड छोड़ और गुरु बन । तू अपनी क्षुद्रता देकर उनके सर्वस्व का स्वामी बन । अपने नश्वर को ठोकर मार और उनके पास से शाश्वत का स्वर सुन । अपने क्षुद्र जीवत्व को त्यागकर शिवत्व में विराम कर ।

जीवित सद्गुरु के सान्निध्य का लाभ जितना हो सके, अधिकाधिक लो । वे अहंकार को काट-कूटकर आपके शुद्ध स्वरुप को प्रकट कर देंगे । उनकी वर्त्तमान हयाती के समय ही जितना हो सके उतना लाभ ले लो । उनकी देह छूट जाने के बाद तो ठीक है, मंदिर

बनते हैं और दुकानदारी चलती है । आपके जीवन को गढ़ने का काम फिर न होगा । आपका वास्त्विक स्वरुप प्रत्यक्ष न हो पायेगा । अब तो 'स्वयं को शरीर मानना और दूसरों को भी शरीर मानना ' ऐसी आपकी दुःखदायक परिच्छिन्न मान्यता को वे छुड़ाते हैं । उनके जाने के पश्चात आपकी यह दुःखपूर्ण मान्यता कौन छुड़ायेगा ? फिर नाम तो रहेगा कि 'मैं साधना करता हूँ ' परन्तु खेल मन का होगा । मन आपको उलझा देगा । शताब्दियों से वह उलझाता आया है ।

*

विवेकसम्पन्न पुरुष की महिमा

(श्री योगवाशिष्ठ महारामायण)

श्री वशिष्ठजी बोले: "रघुकुलभूषण श्रीराम ! जब संसार के प्रति वैराग्य सुदृढ़ हो जाता है, सत्पुरुषों का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है, भोगों की तृष्णा नष्ट हो जाती है, पाँचों विषय नीरस भासने लगते हैं, शास्त्रों के **'तत्त्वमसि'** आदि महावाक्यों का यथार्थ बोध हो जाता है, आनन्दस्वरुप आत्मा की अपरोक्षानुभूति हो जाती है, ह्रदय में आत्मोदय की पूर्ण भावना विकसित हो जाती है तब विवेकी पुरुष एकमात्र आत्मानन्द में रममाण रहता है और अन्य भोग-वैभव, धन-सम्पत्ति को जूठी पत्तल की तरह तुच्छ समझकर उनसे उपराम हो जाता है ।

ऐसे विवेक-वैराग्यसम्पन्न पुरुष एकान्त स्थानों में या लोकाकीर्ण नगरों में, सरोवरों में, वनों में या उद्यानों में, तीर्थों में या अपने घरों में, मित्रों की विलासपूर्ण क्रीड़ाओं में या उत्सव-भोजनादि समारम्भों में एवं शास्त्रों की तर्कपूर्ण चर्चाओं में आसक्ति न होने से कहीं भी लम्बे समय तक रुकते नहीं । कदाचित कहीं रुकें तो तत्त्वज्ञान का ही अन्वेषण करते हैं । वे विवेकी पुरुष पूर्ण शांत, इन्द्रियनिग्रही, स्वात्मारामी, मौनी और एकमात्र विज्ञानस्वरुप ब्रह्म का ही कथन करनेवाले होते हैं । अभ्यास और वैराग्य के बल से वे स्वयं परमपदस्वरुप परमात्मा में विश्रांति पा लेते हैं । वे मनोलय की पूर्ण अवस्था में आरुढ़ हो जाते हैं । जिस प्रकार ह्रदयहीन पत्थरों को दूध का स्वाद नहीं आता, उसी प्रकार इन अलौकिक पुरुषों को विषयों में रस नहीं आता ।

जिस प्रकार दीपक अन्धकार का नाश करता है, उसी प्रकार विवेक-ज्ञानसम्पन्न महापुरुष अपने ह्रदयस्थित अज्ञानरुपी अन्धकार का नाश कर देते हैं, बाहर के राग-द्वेष, शोक-भय

आदि दूर हटा देते हैं । जिनमें तमोगुण का सर्वथा अभाव है, जो रजोगुण से रहित हैं, सत्त्वगुण से भी पार हो चुके हैं वे महापुरुष गगनमण्डल में सूर्य के समान हैं, साक्षात परमात्मस्वरुप हैं । सर्व जीव, प्राणी, समग्र चराचर सृष्टि स्वेच्छानुसार उपहार प्रदान करके उन आनन्दस्वरुप आत्मदेव की ही निरन्तर पूजा करते हैं । अनेक जन्मों तक जब ये आत्मदेव पूजित होते हैं तब वे अपने पुजारी पर प्रसन्न होते हैं । प्रसन्न बने हुए ये देवाधिदेव महेश्वररुप आत्मा पूजा करनेवाले की शुभ कामना से उसे ज्ञान प्रदान करने के लिये अपने पावन दूत को प्रेरित करते हैं ।"

श्री रामजी ने पूछा : "ब्रह्मन ! परमेश्वररुप आत्मा कौन-से दूत को प्रेरित करते हैं और वह दूत किस प्रकार ज्ञानोपदेश देता है ? "

श्री वशिष्ठजी बोले : " रामभद्र ! आत्मा जिस दूत को प्रेरित करता है उसका नाम है विवेक । वह सदा आनन्द देनेवाला है । अधिकारी पुरुष की हृदयरुपी गुफा में वह दूत ऐसे स्थित हो जाता है मानों निर्मल आकाश में चन्द्रमा । विवेक ही वासनायुक्त अज्ञानी जीव को ज्ञान प्रदान करता है और धीरे-धीरे संसार-सागर से उसका उद्धार कर देता है ।

यह ज्ञानस्वरुप अन्तरात्मा ही सबसे बड़े परमेश्वर हैं । वेदसम्मत जो प्रणव है, ॐ है वह उन्हींका बोधक शुभ नाम है । नर-नाग, सुर-असुर ये सब जप, होम, तप, दान, पाठ, यज्ञ और कर्मकाण्ड के द्वार नित्य उन्हींको प्रसन्न करते हैं । चिन्मय होने से वे ही सर्वत्र विचरण करते हैं, जागते हैं, और देखते हैं । वे सर्वव्यापक हैं । ये चिदात्मा ही विवेकरुपी दूत को प्रेरित करके उसके द्वारा चित्तरुपी पिशाच को मारकर जीव को अपने दिव्य अनिर्वचनीय पद तक पहुँचा देते हैं ।

अतः तमाम संकल्प-विकल्प, विकार तथा अर्थसंकटों को छोड़कर अपने पुरुषार्थ से उन चिदात्मा को प्रसन्न कर लेना चाहिए । ज्ञानरुपी चिदात्म-सूर्य का उदय होते ही संसाररुपी रात्रि में विचरता हुआ मनरुपी पिशाच नष्ट हो जायेगा । काम-क्रोधादि छः ऊर्मिरुपी कालिमा बिखर जायेगी । जीवन का मार्ग पूर्ण प्रकाशित, आनन्दमय हो जायेगा । मनुष्य जन्म सार्थक हो जायेगा ।

ॐ आनन्द ....

*